2'3

महर्षिपाणिनिविरचिता

पाणिनीयशिक्षा

'प्रभावती' हिन्दी व्याख्यासंवलिता

व्याख्याकार

डॉ. कमलाप्रसाद पाण्डेय

महर्षिपाणिनिविरचिता

पाणिनीयशिक्षा

'प्रभावती' हिन्दी व्याख्यासंवलिता

व्याख्याकार

डॉ. कमलाप्रसाद पाण्डेय

एम०ए०, नव्यव्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, पी-एच०डी०

आचार्य एवम् अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

सी०एम० दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय

बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

एवम्

अध्यक्ष, संस्कृत अध्ययन मण्डल

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय

बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

PANINIYA SHIKSHA

by

Dr. Kamla Prasad Pandey

ISBN : 81-7124-362-2

प्रथम संस्करण : २००३ ई०

मूल्य : २४.०० रुपये

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी-२२१ ००१

फोन व फैक्स : (०५४२) २३५३७४१, २३५३०८२

E-mail : sales@vvpbooks.com

Website : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी-२२१ ००१

समर्पण

मेरी शैशवावस्था में ही स्वर्ग को सिधारते हुए
पूज्य पिता श्री मोहरराम पाण्डेय ने
जिनकी गोद में साग्रह
सौंपा था,
उन्हीं
ममतामयी माता
स्वर्गीया श्रीमती अविलाखी पाण्डेय
को श्रद्धापूर्वक
समर्पित

कमलाप्रसाद पाण्डेय

पुरोवाक्

वेदाङ्गभूत व्याकरणशास्त्र के ज्ञान के लिए 'पाणिनीयशिक्षा' का महत्त्व सर्वविदित है। वेदपुरुष के छः अङ्ग हैं—व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा, कल्प तथा छन्दः। इनमें से व्याकरणशास्त्र को मुख, ज्योतिषशास्त्र को नेत्र, निरुक्तशास्त्र को श्रोत्र, शिक्षाशास्त्र को घ्राण, कल्पशास्त्र को हाथ एवम् छन्दःशास्त्र को पाद कहा गया है। इससे यह सर्वविदित है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद—इन चारों वेदों का साधु परिज्ञान षडङ्गों के सम्यग् ज्ञान के अनन्तर ही सम्भव है। अतः पाणिनीयशिक्षा का महत्त्व सर्वतोभावेन ज्ञात है। इसके सर्वातिशायी महत्त्व को ध्यान में रख कर ही अधिकतर विश्वविद्यालयों में 'पाणिनीयशिक्षा' नामक ग्रन्थ को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है। विद्यार्थियों की कठिनाइयों को ध्यान में रखकर अन्वय, शब्दार्थ और हिन्दी व्याख्या सहित यह ग्रन्थ उनके समक्ष प्रस्तुत है। आशा है पाठक अवश्य ही सन्तुष्ट होंगे।

व्याकरण के लेखन में परमपूज्य गुरुवर प्रोफेसर डॉ० श्रीकान्त पाण्डेय (प्रथम), आचार्य एवम् अध्यक्ष व्याकरण विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी का असीम आशीर्वाद रहा है, एतदर्थ मैं उन श्रीचरण का अत्यन्त ऋणी हूँ। परम विदुषी भगिनी प्रोफेसर डॉ० श्रीमती पुष्पा दीक्षित बिलासपुर ने अनेक सत्परामर्शों से मेरे उत्साह को बढ़ाया है, अतः मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। प्रिय शिष्य डॉ० नरेन्द्रप्रसाद शुक्ल (संस्कृत प्राध्यापक, बिलासपुर) का साधुवाद देकर उनके द्वारा किये गये सहयोग हेतु मैं उनका महत्त्व कम नहीं करना चाहता।

अखण्डसौभाग्यवती धर्मपत्नी श्रीमती प्रभावती पाण्डेय, सुपुत्री कु० प्रियंवदा पाण्डेय, ज्येष्ठपुत्र चि० पीयूष पाण्डेय तथा कनिष्ठ पुत्र चि० प्रदीप पाण्डेय ने मुझे गृह-प्रपञ्च से मुक्त रखा, जिससे मैं पाणिनीयशिक्षा की व्याख्या लिख सका, एतदर्थ मैं सभी को सफल जीवन के लिए शुभाशीः प्रदान कर रहा हूँ।

श्री पुरुषोत्तमदास मोदी ने इस ग्रन्थ का कुशल प्रकाशन किया है, अतः अपने सहयोगात्मक कृत्यों के लिए ये धन्यवाद के पात्र हैं।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
विक्रम सम्वत् २०६०

कमलाप्रसाद पाण्डेय

पाणिनीयशिक्षा

'प्रभावती' व्याख्या-संवलिता

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा।
शास्त्रानुपूर्व्यं तद्विद्याद् यथोक्तं लोकवेदयोः॥ १॥

अन्वय—अथ, (अहम्) पाणिनीयम्, मतम्, यथा, शिक्षाम् प्रवक्ष्यामि। तत्, शास्त्रानुपूर्व्यम्, लोकवेदयोः, यथोक्तम्, विद्यात्।

शब्दार्थ—अथ = अब, (अहम् = मैं), पाणिनीयम् = (महर्षि) पाणिनि के, मतम् = मत के, यथा = अनुसार, शिक्षाम् = शिक्षा को, प्रवक्ष्यामि = कहूँगा। तद् = उस (पाणिनीय मत) को, शास्त्रानुपूर्व्यम् = शास्त्रोपदेष्टाओं की परम्परा से प्राप्त, लोकवेदयोः = लोक और वेद के, यथोक्तम् = अनुकूल, विद्यात् = जानना चाहिए।

व्याख्या—अब मैं पाणिनि के सिद्धान्त के अनुसार पाणिनीय शिक्षा का विवेचन करने जा रहा हूँ। इस पाणिनीय मत को शास्त्रोपदेष्टाओं की परम्परा से प्राप्त लोक और वेद के अनुकूल समझना चाहिए॥ १॥

प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः।
पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम्॥ २॥

अन्वय—अपि, (विद्वत्सु), शब्दार्थम्, प्रसिद्धम्, (अस्ति), (तथापि), अबुद्धिभिः, अविज्ञातम्, (वर्तते)। (अतः), वाचः, उच्चारणे, विधिम्, पुनः, व्यक्तीकरिष्यामि।

शब्दार्थ—अपि = यद्यपि, (विद्वत्सु = विद्वानों में), शब्दार्थं प्रसिद्धम् = साधु शब्दोच्चारण की विधि प्रसिद्ध, (अस्ति = है), (तथापि = तो भी), अबुद्धिभिः = मन्दबुद्धि, (व्यक्तियों), द्वारा, (वह), अविज्ञातम = ज्ञात नहीं, (वर्तते = है)। (अतः = अत एव), वाचः = वर्ण के, उच्चारणे = उच्चारण की, विधिम् = विधि को, पुनः = फिर से, व्यक्तीकरिष्यामि = प्रकट करने जा रहा हूँ।

व्याख्या—यद्यपि विद्वानों में साधु शब्दोच्चारण की विधि सुप्रसिद्ध है, तथापि मन्द बुद्धि वाले व्यक्तियों को वह (साधु शब्दोच्चारण की) विधि स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है। अत एव उन (मन्द बुद्धिवाले व्यक्तियों) को साधु शब्दोच्चारण की विधि का ज्ञान कराने के लिए उसे (साधु शब्दोच्चारण की विधि को) पुनः प्रकट करने जा रहा हूँ॥ २॥

त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा॥ ३॥

अन्वय—प्राकृते, संस्कृते, स्वयम्भुवा, स्वयम्, प्रोक्ताः, त्रिषष्टिः, वा, चतुःषष्टिः, वर्णाः, शम्भुमते, च, अपि, मताः।

शब्दार्थ—प्राकृते = प्रकृतिभूत अथवा प्रकृतिप्राप्त, संस्कृते = संस्कृत भाषा में, स्वयम्भुवा = ब्रह्मा द्वारा, प्रोक्ताः = साक्षादुच्चरित, त्रिषष्टिः = तिरसठ, वा = अथवा, चतुःषष्टिः = चौंसठ, वर्णः = वर्ण, शम्भुमते = शम्भु के मत में, चापि = भी, मताः = अभीष्ट, (सन्ति = हैं)।

व्याख्या—प्रकृतिभूत अथवा प्रकृतिप्राप्त संस्कृत भाषा में ब्रह्मा जी द्वारा साक्षात् उच्चरित तिरसठ अथवा चौंसठ वर्ण हैं और वे ही (तिरसठ अथवा चौंसठ) वर्ण महेश्वर को भी अभिष्ट हैं॥ ३॥

स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः॥ ४॥
अनुस्वारो विसर्गश्च ≍क≍पौ चापि पराश्रितौ।
दुस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो लृकारः प्लुत एव च॥ ५॥

अन्वय—विंशतिः, च, एकः, स्वराः, (सन्ति)। स्पर्शानाम्, पञ्चविंशतिः, (भेदाः), (भवन्ति)। च, यादयः, अष्टौ, स्मृताः, (वर्तन्ते)। च, यमाः, चत्वारः, स्मृताः, वर्तन्ते, अनुस्वारः, च, विसर्गः, (भवति), च, पराश्रितौ, ≍क≍पौ, (भवतः)। च, दुस्स्पृष्टः, इति विज्ञेयः, च, लृकारः प्लुतः, एव, (भवति)।

शब्दार्थ—विंशतिः = बीस, च = और, एकः = एक (अर्थात् इक्कीस), स्वराः = स्वर, (सन्ति = हैं)। स्पर्शानाम् = स्पर्शों के, पञ्चविंशतिः = पच्चीस, (भेदाः = भेद), (भवन्ति = होते हैं)। च = तथा, यादयः = य आदि, अष्टौ = आठ, स्मृताः = स्वीकृत, (वर्तन्ते = हैं)। च = और, यमाः = यम, चत्वार = चार, स्मृताः = स्वीकृत, (वर्तन्ते = हैं)। अनुस्वारः = अनुस्वार, च = और, विसर्गः = विसर्ग, (भवति = है = हैं)। च = तथा, पराश्रितौ = पर की सन्निधि में जायमान, ≍क≍पौ, = ≍क = ककारखकाराश्रित जिह्वामूलीय (और) ≍प = पकार-फकाराश्रित उपध्मानीय, (भवतः = हैं)। च = तथा, दुस्स्पृष्टः = दुस्स्पृष्ट, इति विज्ञेयः = ऐसा जानना (अर्थात् जानना) चाहिए, च = और, लृकारः = लृकार, प्लुतः = प्लुत, एव = ही, (भवति = होता है)।

व्याख्या—स्वर इक्कीस प्रकार के हैं। जैसे-अ, इ, उ तथा ऋ के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भेद तथा लृ। इनका सङ्कलित योग तेरह है। ए, ओ ऐ एवम् औ के दीर्घ और प्लुत भेद हैं। इनका सङ्कलित योग आठ हुआ। इसप्रकार 21 स्वर हो

जाते हैं। स्वरों को इस प्रकार समझा जा सकता है—अ, आ, आ ३, इ, ई, ई ३, उ, ऊ, ऊ ३, ऋ, ॠ, ॠ३, ऌ, ए, ए ३, ओ, ओ ३, ऐ, ऐ ३, औ तथा औ ३। स्पर्श वर्ण २५ हैं। जैसे—क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ तथा म। य आदि आठ हैं। जैसे- य, र, ल, व, श, ष, स तथा ह। प्रत्येक व्यञ्जन वर्गों में से पहले के चार वर्णों के पाँचवें वर्ण के आगे रहने पर बीच में पूर्व वर्ण के समान वर्ण को यम कहा जाता है। जैसे—पलिक्क्नी, चख्ख्नतुः, अग्ग्निः, घ्घ्नन्ति। इन उदाहरणों में क्रमशः क्, ख्, ग्, घ् के बाद में उन्हीं क् ख ग् घ के समान आने वाले वर्णों को यम कहा गया है। (इसका विस्तृत विवेचन प्रातिशाख्यों में देखना चाहिए)। अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय ≍क, ≍ख तथा उपध्मानीय ≍प, ≍फ। दुस्स्पृष्ट ऌ है। ये सभी ६३ वर्ण हैं। यदि ऌकार का प्लुत भेद माना जाय तो वर्ण ६४ हो जायेंगे॥ ४-५॥

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युक्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥ ६॥

अन्वय—आत्मा, (संस्काररूपेण, स्वनिहितान्), अर्थान्, बुद्ध्या, समेत्य, विवक्षया, मनः, युङ्क्ते। (तत्), मनः, कायाग्निम्, आहन्ति, (तथा), सः, मारुतम्, प्रेरयति।

शब्दार्थ—आत्मा = आत्मा, (संस्काररूपेण, स्वनिहितान् = वासनारूप में स्वनिहित), अर्थान् = पदार्थों को (= का), बुद्ध्या = बौद्धिक, समेत्य = सङ्कलन करके, विवक्षया = उच्चारण की इच्छा से, मनः = मन को, युङ्क्ते = प्रेरित करता है। (तत् = वह), मनः = मन, कायाग्निम् = जठराग्नि को, आहन्ति = आहत करता है, (तथा = और), सः = वह, (जठराग्नि), मारुतम् = प्राणवायु को, प्रेरयति = प्रेरित करता है।

व्याख्या—आत्मा वासनारूप में स्वनिहित पदार्थों का बौद्धिक संकलन करके उच्चारण की इच्छा से मन को प्रेरित करता है। वह मन जठराग्नि को आहत करता है तथा वह जठराग्नि प्राण वायु को प्रेरित करता है॥ ६॥

मारुतस्तूरसि चरन्मद्रं जनयति स्वरम्।
प्रातःसवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम्॥ ७॥

अन्वय—(सः), तु, मारुतः, उरसि, चरन्, मन्द्रम्, स्वरम्, जनयति, तम्, (स्वरम्), गायत्रं छन्दः, प्रातःसवनयोगम्, आश्रितम्, (अस्ति)।

शब्दार्थ—(सः = वह), तु[१], मारुतः = प्राणवायु, उरसि = हृदय-प्रदेश में, चरन् = सञ्चरण करता हुआ, मन्द्रम् = गम्भीर, स्वरम् = ध्वनि को, जनयति = उत्पन्न करता है, तम् = उस अर्थात् जिस, (स्वरम् = स्वर) में, गायत्रं

---

१. तु = पादपूरणार्थक है।

छन्दः = गायत्री छन्दोबद्ध (मन्त्रों) का, प्रातःसवनयोगम् = प्रातःसवन कर्म में पाठ, आश्रितम् = विहित, (अस्ति = है)।

व्याख्या—वह प्राणवायु हृदय-प्रदेश में सञ्चरण करता हुआ गम्भीर ध्वनि को उत्पन्न करता है, जिस स्वर में गायत्री छन्दोबद्ध मन्त्रों का प्रातः सवनकर्म में पाठ विहित है॥७॥

कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम्।
तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जगतानुगम्॥८॥

अन्वय—(सः, एव, मारुतः,) कण्ठे, (चरन्), मध्यमम्, स्वरम्, जनयति, यत्र,) त्रैष्टुभानुगम्, माध्यन्दिनयुगम्, (विहितम्, अस्ति)। (सः, एव, मारुतः,) शीर्षण्यम्, (चरन्), तारम्, (स्वरम्, जनयति, यत्र,) जगतानुगम्, तार्तीयसवनम्, (विहितम्, अस्ति)।

शब्दार्थ—(सः = वह, एव = ही, मारुतः =प्राणवायु,) कण्ठे = कण्ठ-प्रदेश में, (चरन् = सञ्चरण करता हुआ, मध्यमम् = मध्यम (न मन्द्र और न तार), (स्वरम् = ध्वनि को, जनयति = उत्पन्न करता है, यत्र = जिस स्वर में,) त्रैष्टभानुगम् = त्रिष्टुप्-छन्दोबद्ध (मन्त्रों) का, माध्यन्दिनयुगम् = माध्यन्दिन कर्म में पाठ, (विहितम् = विहित, अस्ति = है)। (सः = वह, एव = ही, मारुतः = प्राणवायु,) शीर्षण्यम् = शिरःप्रदेश में पहुँच कर वहाँ, (चरन् = सञ्चरण करता हुआ,) तारम् = तार (स्वरम् = ध्वनि) को, जनयति = उत्पन्न करता है, यत्र = जिस ध्वनि में,) जगतानुगम् = जगतीच्छन्दोबद्ध (मन्त्रों) का, तार्तीयसवनम् = सायंसवन कर्म में पाठ, (विहितम् = विहित, अस्ति = है)।

व्याख्या—वह ही प्राणवायु कण्ठ-प्रदेश में सञ्चरण करता हुआ मध्यम (= न मन्द्र और न तार) ध्वनि को उत्पन्न करता है, जिस ध्वनि में त्रिष्टुपृछन्दोबद्ध मन्त्रों का माध्यन्दिन सवन कर्म में पाठ विहित है। वही प्राणवायु शिर-प्रदेश में पहुँच कर वहाँ सञ्चरण करता हुआ तार ध्वनि को उत्पन्न करता है, जिस ध्वनि में जगतीच्छन्दोबद्ध मन्त्रों का सायंसवन कर्म में पाठ विहित है॥८॥

सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्रमापद्य मारुतः।
वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः॥९॥
स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः।
इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत॥१०॥

अन्वय—(सः), मारुतः, सोदीर्णः, (भूत्वा), मूर्ध्नि, अभिहतः, वक्रम्, आपद्य, वर्णान्, जनयते। तेषाम्, स्वरतः, कालतः, स्थानात्, प्रयत्नानुप्रदानतः, पञ्चधा, विभागः, स्मृतः, इति, वर्णविदः, प्राहुः। तत्,

निपुणम्, निबोधत।

शब्दार्थ—(सः = वह), मारुतः = प्राणवायु, सोदीर्णः = उन्मुख, (भूत्वा = होकर), मूर्ध्नि = मूर्धा में, अभिहतः = टकराकर, वक्रम् = वापस, आपद्य = होकर, वर्णान् = वर्णों को, जनयते = उत्पन्न करता है। तेषाम् = उन (वर्णों) का, स्वरतः = उदात्त आदि स्वर के कारण, कालतः = उच्चारणकाल के कारण, स्थानात् = उच्चारण स्थान के कारण, प्रत्यानुप्रदानतः = आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न के कारण, पञ्चधा = पाँच प्रकार से, विभागः = विभाजन, स्मृतः = कहा गया है, इति = ऐसा, वर्णविदः = वर्णतत्त्ववेत्ता, प्राहुः = कहते हैं। तत् = इस (विषय) को, निषुणम् = भली-भाँति, निबोधत = जानें।

व्याख्या—वह प्राणवायु जब उन्मुख होकर मूर्धा से टकराकर वापस लौटता हुआ मुख तथा तालु आदि स्थानों को प्राप्त करता है तब वह अकार आदि वर्णों को उत्पन्न करता है। उन वर्णों का उदात्त आदि स्वर, उच्चारण काल, उच्चारण स्थान तथा आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न के आधार पर पाँच प्रकार का विभाजन किया गया है (अर्थात् प्रसिद्ध है)—ऐसा वर्णतत्त्ववेत्ता कहते हैं। अत एव आप इस विषय को भली-भाँति जानें॥ ९-१०॥

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि॥ ११॥

अन्वय—अचि, उदात्तः, च, अनुदात्तः, च, स्वरितः, (इति), त्रयः, स्वराः, (वर्तन्ते)। कालतः, (अपि, अचि) ह्रस्वः, दीर्घः, च, प्लुतः, इति, नियमाः, (भवन्ति)।

शब्दार्थ—अचि = अच् में, उदात्तः = उदात्त, च = और, अनुदात्तः = अनुदात्त, च = और, स्वरितः = स्वरित, (इति = ये), त्रयः = तीन, स्वराः = स्वर, (वर्तन्ते = हैं)। कालतः = काल (की दृष्टि) से, (अपि = भी), (अचि = अच् में), ह्रस्वः = ह्रस्व, दीर्घः = दीर्घ, च = और, प्लुतः = प्लुत, इति = ये, नियमाः = नियम, (भवन्ति = हैं)।

व्याख्या—स्वरों की दृष्टि से उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के भेद से अच् तीन प्रकार का होता है। काल की दृष्टि से भी ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत के भेद से अच् तीन प्रकार का होता है, ऐसा नियम समझना चाहिए।

विशेष—ए, ओ, ऐ तथा औ में ह्रस्व नहीं होता है॥ ११॥

उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः॥ १२॥

अन्वय—(एषु, त्रिषु, स्वरेषु), उदात्ते, निषादगान्धारौ, अनुदात्ते, ऋषभधैवतौ, (अन्तर्भूतौ, स्तः)। एते, षड्जमध्यमपञ्चमाः, स्वरितप्रभवाः,

हि, (सन्ति)।

शब्दार्थ—(एषु = इन, त्रिषु = तीन, स्वरेषु = स्वरों में), उदात्ते = उदात्त में, निषादगान्धारौ = निषाद और गान्धार, अनुदात्ते = अनुदात्त में, ऋषभधैवतौ = ऋषभ तथा धैवत, (अन्तर्भूतौ = अन्तर्भूत, स्तः = हैं)। एते = ये, षड्जमध्यम-पञ्चमाः = षड्ज, मध्यम एवम् पञ्चम, स्वरितप्रभवाः = स्वरित से उद्भूत हि = ही, (सन्ति = हैं)।

व्याख्या—उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित—इन तीन स्वरों में उदात्त स्वर में सङ्गीत शास्त्र में प्रसिद्ध निषाद तथा गान्धार स्वरों का और अनुदात्त में ऋषभ एवम् धैवत स्वरों का अन्तर्भाव हो जाता है। षड्ज, मध्यम और पञ्चम स्वर भी स्वरित स्वर से ही उत्पन्न हैं अर्थात् षड्ज आदि तीन स्वरों का स्वरित स्वर में अन्तर्भाव हो जाता है॥ १२॥

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च॥ १३॥

अन्वय—वर्णनाम्, उरः, कण्ठः, शिरः, जिह्वामूलम्, दन्ताः, नासिकोष्ठौ, तथा, तालु, (इति), अष्टौ, स्थानानि, (सन्ति)।

शब्दार्थ—वर्णनाम् = वर्णों के, उरः = हृदय, कण्ठः = कण्ठ, शिरः = मूर्धा, जिह्वामूलम् = जिह्वामूल, दन्ताः = दन्त, नासिकोष्ठौ = नासिका और ओष्ठ, तथा = एवम्, तालु = तालु, (इति = ये) अष्टौ = आठ, स्थानानि = (उच्चारण) स्थान (सन्ति = हैं)।

व्याख्या—वर्णों के उच्चारण स्थान आठ हैं—हृदय, कण्ठ, मूर्धा, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ और तालु।

टिप्पणी—इस श्लोक में चार चकार आए हैं, जो पादपूरणार्थक हैं॥ १३॥

ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः॥ १४॥

अन्वय—ऊष्मणः, ओभावः, विवृत्तिः, शषसाः, रेफः, जिह्वामूलम्, उपध्मा, च, (इति), अष्टविधा, गतिः (भवति)।

शब्दार्थ—उष्मणः = (विसर्गात्मक) ऊष्मा के, ओभावः = ओकार हो जाना, विवृत्तिः = सन्ध्यभाव होना, शषसाः = शकार, षकार और सकार रूप में परिणत होना, रेफः = रेफ होना, जिह्वामूलम् = जिह्वामूलीय होना, उपध्मा = उपध्मानीय होना, च = और, (इति = इस प्रकार), अष्टविधा = आठ प्रकार की, गतिः = गति, (भवति = होती है)।

व्याख्या—विसर्गात्मक ऊष्मा का ओकार हो जाना, सन्ध्यभाव होना, शकार रूप में परिणत होना, षकार रूप में परिणत होना, सकार रूप में परिणत

होना, रेफ हो जाना, जिह्वामूलीय हो जाना तथा उपध्मानीय हो जाना—इस प्रकार आठ प्रकार का स्वरूप उपलब्ध होता है।

टिप्पणी—इन आठों प्रकार के विसर्ग का उदाहरण क्रमशः इस प्रकार है—शिवो वन्द्यः, क ईशः, हरिश्शेते, रामष्षष्ठः कस्कः, अहर्पतिः, क ≍ करोति और क ≍ पचति।

विसर्ग की ऊष्म संज्ञा ऊष्मसंज्ञक वर्णों में उसका पाठ होने के कारण तात्स्थ्य लक्षण से 'मञ्चाः क्रोशन्ति' के समान जानना चाहिए।

विवृत्ति के विषय में याज्ञवल्क्यशिक्षा में कहा गया है—

> द्वयोस्तु स्वरयोर्मध्ये सन्धिर्यत्र न दृश्यते।
> विवृत्तिस्तत्र विज्ञेया या ईशेति निदर्शनम्॥

विसर्ग के स्थान में आदेश के रूप में आये यकारादि वर्णों का लोप हो जाने पर 'य ईश' आदि उदाहरणों में अकार और ईकार स्वरों के बीच विशेष कारणों से सन्धि का अभाव विवृत्ति है॥ १४॥

यद्योभावप्रसन्धानमुपकारादिपरं पदम्।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद् यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः॥ १५॥

अन्वय—यदि, उकारादिपरं पदम्, (तथा), ओभावप्रसन्धानम्, (तर्हि), तादृशम्, (ओकारम्), स्वरान्तम्, विद्यात्, यद्, अन्यद्, ऊष्मणः, व्यक्तम्, (विद्यात्)।

शब्दार्थ—यदि = यदि, उकारादिपरं पदम् = उकारादि पद पर में हो, (तथा) ओभावप्रसन्धानम् = उससे पूर्व ओकार दृष्टि गोचर होता हो, (तर्हि = तो), तादृशम् = उस प्रकार के (ओकारम् = ओकार को), स्वरान्तम् = स्वरस्थानिक, विद्यात् = समझे। यद् = जो कोई, अन्यद् = उससे भिन्न (है उस) को, ऊष्मणः = विसर्गस्थानिक, व्यक्तम् = स्पष्टतः (विद्यात = जाने)

व्याख्या—यदि उकारादि पद पर में हो तथा उससे पूर्व ओकार दृष्टिगोचर होता हो तो उस प्रकार के ओकार को स्वरस्थानिक जानना चाहिए। इसके विपरीत उकारादि पद के पर में न रहने पर उसके पूर्व के ओकार को विसर्गस्थानिक समझना चाहिए॥ १५॥

हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तःस्थाभिश्च संयुतम्।
उरस्यं तं विजानीयात् कण्ठ्यमाहुरसंयुतम्॥ १६॥

अन्वय—पञ्चमैः, युक्तम्, च, अन्तःस्थाभिः, संयुतम्, हकारम्, उरस्यम्, विजानीयात्। असंयुतम्, तम्, कण्ठ्यम्, आहुः।

शब्दार्थ—पञ्चमैः = पञ्चम (वर्णों) से, युक्तम् = युक्त, च = तथा, अन्तःस्थाभिः = अन्तःस्था (संज्ञक वर्णों) से संयुक्त, हकारम् = हकार को, उरस्यम् = हृदयस्थानिक, विजानीयात् = समझे। असंयुक्तम् = असंयुक्त, तम् = उस (हकार) को, कण्ठ्यम् = कण्ठस्थानिक, आहुः = बताया गया है।

व्याख्या—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग के पञ्चम अक्षरों अर्थात्, ङ, ञ, ण, न तथा म वर्णों से युक्त और अन्तःस्थासंज्ञक वर्णों अर्थात्, य, र, ल तथा व से संयुक्त हकार को हृदयस्थानिक समझना चाहिए। असंयुक्त हकार को विद्वानों ने कण्ठस्थानिक बताया है।

टिप्पणी—हृदयस्थानिक हकार के उदाहरण "ह्लयति, ह्वलयति" आदि को जानना चाहिए॥ १६॥

कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू।
स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः॥ १७॥

अन्वय—अहौ, कण्ठ्यौ, (तथा), उपू, ओष्ठजौ, (विज्ञेयौ), इचुयशाः, तालव्याः, (च,) ऋटुरषाः, मूर्धन्याः, स्युः, लृतुलसाः, दन्त्याः, स्मृताः।

शब्दार्थ—अहौ = अकार तथा हकार को, कण्ठ्यौ = कण्ठस्थानीय, (तथा, उपू = उकार एवम् पवर्ग को ओष्ठस्थानीय, (विज्ञेयौ = जानना चाहिए)। इचुयशाः = इकार, चवर्ग, यकार तथा शकार, तालव्याः = तालु से उत्पन्न, च = और), ऋटुरषाः = ऋकार, टवर्ग, रेफ एवम् षकार, मूर्धन्याः = मूर्धा से उत्पन्न, स्युः = हैं। लृतुलसाः = लृकार, तवर्ग, लकार और सकार, दन्त्याः = दन्त से उत्पन्न, स्मृताः = कहे गये हैं।

व्याख्या—अकार और हकार का उच्चारण स्थान कण्ठ तथा उकार एवम् पवर्ग = प, फ, ब, भ, म का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। इकार, चवर्ग = च, छ, ज, झ, ञ, यकार तथा शकार का उच्चारण स्थान तालु है और ऋकार, टवर्ग = ट, ठ, ड, ढ, ण रेफ एवम् षकार का मूर्धा तथा लृकार, तवर्ग = त, थ, द, ध, न का दन्त कहा गया है॥ १७॥

जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैः।
एऐ तु कण्ठतालव्या ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ॥ १८॥

अन्वय—बुधैः, कुः, तु, जिह्वामूले, प्रोक्तः, (च), वः, दन्त्योष्ठ्यः, स्मृतः, एऐ, कण्ठतालव्यौ, (ज्ञेयौ), ओऔ, कण्ठोष्ठजौ, स्मृतौ।

शब्दार्थ—बुधैः = सुधीजनों ने, कुः = कवर्ग को, तु = तो, जिह्वामूले = जिह्वामूलीय, प्रोक्तः = कहा है, (च = तथा), वः = वकार को, दन्त्योष्ठ्यः = दन्त्योष्ठ्य, स्मृतः = कहा है। एऐ = ए, ऐ को, कण्ठतोलव्यौ = कण्ठतालव्य, (ज्ञेयौ = जानना चाहिए)। ओऔ = ओ, औ, कण्ठोष्ठजौ = कण्ठोष्ठज, स्मृतौ = कहे गये हैं।

व्याख्या—सुधीजनों ने कवर्ग—क, ख, ग, घ, ङ का जिह्वामूल तथा वकार का दन्तोष्ठ उच्चारण स्थान कहा है। इसी प्रकार ए, ऐ का कण्ठ-तालु एवम् ओ, औ का कण्ठोष्ठ स्थान जानना चाहिए॥ १८॥

अर्धमात्रा तु कण्ठस्य एकारैकारयोर्भवेत्।
ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विवृतसंवृतम्॥ १९॥

अन्वय—एकारैकारयोः, (च), ओकारौकारयोः, कण्ठस्य, अर्धमत्रा, स्यात्, तु, मात्रा, भवेत्। तयोः, विवृतसंवृतम्, (ज्ञेयम्)।

शब्दार्थ—एकारैकारयोः = एकार तथा ऐकार में, (च = और), ओकारौकारयोः = ओकार एवम् औकार में, कण्ठस्य = कण्ठ की, अर्धमात्रा = आधी मात्रा, स्यात् = होती है, तु = अथवा, मात्रा = एक मात्रा, भवेत् = होती है। तयोः = उनमें, विवृतसंवृतम् = विवृत और संवृत, (ज्ञेयम् = जानना चाहिए)।

व्याख्या—एकार तथा ऐकार में अकार को अर्धमात्रिक और इकार को सार्धमात्रिक जानना चाहिए। इसीप्रकार ओकार और औकार में अकार को अर्धमात्रिक तथा उकार को सार्धमात्रिक समझना चाहिए। अथवा एकार तथा ऐकार में अकार को एकमात्रिक और इकार को एकमात्रिक जानना चाहिए। इसी प्रकार ओकार और औकार में अकार को एकमात्रिक एवम् उकार को एकमात्रिक समझना चाहिए[1]। उनमें भी पूर्वभाग में विद्यमान अवर्ण का विवृतत्त्व तथा उत्तरभाग में विद्यमान वर्ण का संवृतत्त्व ज्ञातव्य है॥ १९॥

संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम्।
घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः॥ २०॥

अन्वय—मात्रिकम्, संवृतम्, तु, द्विमात्रिकम्, विवृतम्, ज्ञेयम्। सर्वे, घोषाः संवृताः वा, अघोषाः, विवृत्ताः, स्मृताः।

शब्दार्थ—मात्रिकम् = एकमात्रिक को, संवृतम् = संवृत, तु = और, द्विमात्रिकम् = द्विमात्रिक को, विवृतम् = विवृत, ज्ञेयम् = जानना चाहिए। सर्वे = सभी, घोषाः = घोष (-संज्ञक वर्ण), संवृता = संवृत, वा = और, अघोषाः = अघोष (-संज्ञक वर्ण) विवृताः = विवृत, स्मृताः = कहे गये हैं।

व्याख्या—एकमात्रिक ह्रस्व अवर्ण का प्रयोगावस्था में संवृत प्रयत्न और द्विमात्रिक दीर्घ आकार (तथा अन्य इकार आदि स्वरों) का विवृत प्रयत्न जानना चाहिए। व्यञ्जनों में भी सभी घोषसंज्ञक वर्ण संवृत यत्न वाले और अघोषसंज्ञक वर्ण विवृत प्रयत्न वाले होते हैं।

---

१. विशेष—यहाँ वर्तिककार प्रथम पक्ष से तथा भाष्यकार द्वितीय पक्ष से सहमत हैं। द्रष्टव्य—महाभाष्य-१/१/४७ तथा ८/२/१०६॥ १९॥

विशेष—भट्टोजिदीक्षित ने घोष तथा अघोष वर्णों का विभाजन निम्न प्रकार से किया है—

खयां यमाः खयः ≍ क ≍ पौ विसर्गः शर एव च।
एते श्वासानुप्रदाना अघोषाश्च निवृण्वते॥
कण्ठमन्ये तु घोषाः स्युः संवृता नादभागिनः।
अयुग्मा वर्गा यमगा यणश्चाल्पासवः स्मृताः॥

खयों के यम तथा खय् प्रत्याहार में आने वाले वर्ण, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, विसर्ग और शर् प्रत्याहार—इन सभी का विवार, श्वास एवम् अघोष प्रयत्न होता है। इनके अतिरिक्त वर्णों का संवार, नाद तथा घोष प्रयत्न होता है। वर्गों के पहले, तीसरे, पाँचवें और प्रथम, तृतीय वर्णों के यम एवम् यण् प्रत्याहार—ये अल्पप्राण हैं। इनके अतिरिक्त वर्ण महाप्राण कहलाते हैं॥ २०॥

स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम्।
तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च॥ २१॥

अन्वय—स्वराणाम् च, ऊष्णाम्, करणम्, विवृतम्, एव, स्मृतम्। तेभ्यः, अपि, एङौ, विवृतौ, (स्मृतौ), च, ताभ्याम्, ऐचौ, तथैव, (स्तः)।

शब्दार्थ—स्वराणाम् = स्वरों का, च = और, ऊष्मणाम् = ऊष्म (-संज्ञक) वर्णों का, करणम् = आभ्यन्तर प्रयत्न, विवृतम् = विवृत, एव = ही, स्मृतम् = कहा गया है। तेभ्यः = उन (स्वरों) में, अपि = भी, एङौ = एकार तथा ओकार, विवृतौ = विवृततर, (स्मृतौ = कहे गये हैं), च = तथा, ताभ्याम् = उन (एकार और ओकार) की अपेक्षा, ऐचौ = ऐकार तथा औकार, तथैव = उसी प्रकार अर्थात् विवृततम, (स्तः = हैं)।

व्याख्या—स्वरों अर्थात् अच् वर्णों और ऊष्मसंज्ञकं (श, ष, स, ह) वर्णों का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत ही कहा गया है। उन स्वरों में भी एङ् = एकार तथा ओकार विवृततर कहे गये हैं और उन एकार और ओकार वर्णों की अपेक्षा ऐच् अर्थात् ऐकार एवम् औकार को विवृततम जानना चाहिए॥ २१॥

अनुस्वारयमानाञ्च नासिकास्थानमुच्यते।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः॥ २२॥

अन्वय—अनुस्वारयमानाम्, स्थानम्, नासिका, उच्यते, च, अयोगवाहाः, आश्रयस्थानभागिनः, विज्ञेयाः।

शब्दार्थ—अनुस्वारयमानाम् = अनुस्वार और यम वर्णों का, स्थानम् = उच्चारण-स्थान, नासिका = नासिका, उच्यते = कहा जाता है, च = और, अयोगवाहाः = अयोगवाह का (उच्चारण), आश्रयस्थानभागिनः = आश्रयीभूत वर्णस्थान से (भी), विज्ञेयाः = जानना चाहिए।

व्याख्या—अनुस्वार और यम वर्णों का उच्चारण स्थान नासिका कहा गया है। तथा अयोगवाहों अर्थात् अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय-यमस्वरूपों का उच्चारण उनके आश्रयीभूत वर्णस्थान से भी होता है॥ २२॥

अलाबुवीणानिर्घोषो दन्तमूल्यः स्वरानुगः।
अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च॥ २३॥

अन्वय—अलाबुवीणानिर्घोषः, दन्तमूल्यः, स्वारनुगः, अनुस्वारः, तु, ह्रोः, च, शषसेषु, नित्यम्, कर्तव्यः।

शब्दार्थ—अलाबुवीणानिर्घोषः = तुम्बीफल की वीणा के सदृश स्वर वाले, दन्तमूल्यः = दन्तमूल में समुत्पन्न, स्वरानुगः = स्वरों का अनुसरण करने वाले, अनुस्वारः = अनुस्वार का, तु = पादपूरणार्थक, ह्रोः = हकार तथा रेफ के परे रहते, च = और शषसेषु = श, ष एवम् स के परे रहते, नित्यम् = सर्वदा, कर्तव्यः = उच्चारण करना चाहिए।

व्याख्या—तुम्बीफल की वीणा के समान स्वर वाले, दन्तमूल में समुत्पन्न तथा स्वरों का अनुसरण करने वाले अनुस्वार का हकार, रेफ, शकार, षकार तथा सकार के परे रहते सर्वदा उच्चारण करना चाहिए।

(अथवा—हकार, रेफ, शकार, षकार और सकार के परे रहते अनुस्वार का ही उच्चारण करना चाहिए। इस अनुस्वार का उच्चारण तुम्बीफ़ल की वीणा के स्वर के समान दन्तमूल स्थान से आश्रयीभूत स्वर के सहारे करना चाहिए॥ २३॥)

अनुस्वारे विवृत्त्यां तु विरामे चाक्षरद्वये।
द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद् यत्रौकारवकारयोः॥ २४॥

अन्वय—अनुस्वारे, विवृत्त्याम्, विरामे, च, अक्षरद्वये, (पूर्वस्य, अचः, उच्चारणकाले,) द्विरोष्ठ्यौ, तु, गृह्णीयात्, यत्रौकारवकारयोः।

शब्दार्थ—अनुस्वारे = अनुस्वार के परे रहते, विवृत्त्याम् = विवृत्ति के परे रहते, विरामे = अवसान के रहने पर, च = और, अक्षरद्वये = संयुक्ताक्षर के पर में रहने पर (पूर्वस्य = पूर्व के, अचः = अच् का, उच्चारणकाले = उच्चारण करते समय,) द्विरोष्ठ्यौ = ओष्ठों को दो बार, तु = उसी प्रकार, विगृह्णीयात् = खोलना चाहिए, यत्रौकारवकारयोः = जिस प्रकार औकार तथा वकार के उच्चारण के समय खोला जाता है।

व्याख्या—अनुस्वार तथा विवृत्ति के पर में रहने पर, अवसान के रहने पर और संयुक्ताक्षर के परे रहते पूर्व के अच् का उच्चारण करते समय ओष्ठों को दो

बार उसी प्रकार खोलना चाहिए जिस प्रकार औकार तथा वकार के उच्चारण के समय खोला जाता है॥ २४॥

व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद् वर्णान्प्रयोजयेत्॥ २५॥

अन्वय—यथा, व्याघ्री, पतनभेदाभ्याम्, भीता, दंष्ट्राभ्याम्, पुत्रान्, हरेत्, च, न, पीडयेत्, तद्वद्, वर्णान्, प्रयोजयेत्।

शब्दार्थ—यथा = जिस प्रकार, व्याघ्री = बाघिन (और व्याघ्रमुखी मार्जारी), पतनभेदाभ्याम् = गिरने तथा छिन्न-भिन्न हो जाने के भय से, भीता = भयभीत होती हुई, दंष्ट्राभ्याम् = दातों से, पुत्रान् = बच्चों को, हरेत् = ले जाती है, च = और, न = नहीं, पीडयेत् = पीड़ा पहुँचाती है, तद्वत् = उसी प्रकार, वर्णान् = वर्णों का, प्रयोजयेत् = उच्चारण करना चाहिए।

व्याख्या—जिस प्रकार बाघिन और बिल्ली गिरने तथा छिन्न-भिन्न हो जाने के भय से भयभीत होती हुई अपने बच्चों को दाँतों से दबाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले तो जाती हैं किन्तु इतना नहीं दबाती हैं कि उनके बच्चों को पीड़ा का अनभव हो। उसी प्रकार वर्णों का उनके स्वरूपच्यवन एवम् स्वरूप-भङ्ग के भय से उच्चारण करते समय उनके उच्चारण-स्थानों को उतना ही व्याप्त करना चाहिए, जिससे वर्णों का पीड़न (= अस्पष्ट अथवा विकृत उच्चारण) न हो॥ २५॥

यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रँ इत्यभिभाषते।
एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खे अराँ इव खेदया॥ २६॥

अन्वय—यथा, सौराष्ट्रिका, नारी, तक्रँ इति, अभिभाषते, एवम्, रङ्गाः (वर्णाः), प्रयोक्तव्याः (सन्ति), (तत्र निर्दर्शनम्) खे अराँ इव खेदया, (बोधव्या, अस्ति)।

शब्दार्थ—यथा = जिस प्रकार, सौराष्ट्रिका = सौराष्ट्र देश की नारी, तक्रँ इति = (निरनुनासिक शब्द को भी) "तक्रँ" इस प्रकार सानुनासिक, अभिभाषते = उच्चारण करती है, एवम् = उसी प्रकार, रङ्गाः = रङ्ग, (वर्णाः = वर्ण), प्रयोक्तव्याः = उच्चारण करने योग्य, (सन्ति = हैं), (तत्र निदर्शनम् = जैसे उदाहरण स्वरूप), खे अराँ इव खेदया, (बोधव्या = जानने योग्य, अस्ति = है)।

व्याख्या—जिस प्रकार सौराष्ट्र देश की नारी निरनुनासिक शब्द को भी 'तक्रँ' इस प्रकार सानुनासिक उच्चारण करती हैं उसी प्रकार रङ्ग वर्णों का

उच्चारण करना चाहिए। जैसे कि वेद में "खे अराँ इव खेदया" यह उच्चारण समुपलब्ध होता है।

टिप्पणी—नकारस्थानिक और मकारस्थानिक रेफ के प्रभाव से पूर्ववर्ती उपधासंज्ञक स्वर का अनुनासिकत्व रङ्ग है। इसके दो भेद हैं—स्वर पर रङ्ग तथा व्यञ्जन पर रङ्ग। द्रष्टव्य-लोमशशिक्षा—७॥ २६॥

रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन्नो ग्रसेत् पूर्वमक्षरम्।
दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात् पश्चान्नासिक्यमाचरेत्॥ २७॥

अन्वय—रङ्गवर्णम्, (तथा), प्रयुञ्जीरन्, (यथा), पूर्वम्, अक्षरम्, न, ग्रसेत्। (तदनन्तरम्, आदौ), दीर्घस्वरम्, प्रयुञ्जीयात्, पश्चात् नासिक्यम्, आचरेत्।

शब्दार्थ—रङ्गवर्णम् = रङ्ग वर्ण का, (तथा = इस प्रकार), प्रयुञ्जीरन् = उच्चारण करे, (यथा = जिससे), पूर्वम् = पूर्ववर्त्ती, अक्षरम् = वर्ण का, न ग्रसेत् = ग्रास न होवे। (तदनन्तरम् = उसके पश्चात्, आदौ = पहले) दीर्घस्वरम् = दीर्घ स्वर का, प्रयुञ्जीयात् = उच्चारण करे, पश्चात् = तदनन्तर, नासिक्यम् = अनुनासिक को, आचरेत् = बोले।

व्याख्या—रङ्गसंज्ञक वर्ण का इस प्रकार उच्चारण करना चाहिए, जिससे पूर्ववर्ती वर्ण का ग्रास = संस्पर्श न हो अर्थात् उसका भी स्वरूप रङ्ग वर्ण से प्रभावित होकर विकृत न हो जाए और उसके पश्चात् पहले दीर्घ स्वर का उच्चारण करना चाहिए, तत्पश्चात्, अनुनासिक वर्ण का उच्चारण करना चाहिए॥ २७॥

हृदये चैकमात्रस्त्वर्द्धमात्रस्तु मूर्द्धनि।
नासिकायां तथार्द्धं च रङ्गस्यैवं द्विमात्रता॥ २८॥

अन्वय—एकमात्रः, तु, हृदये, अर्द्धमात्रः, तु, मूर्द्धनि, तथा च, अर्द्धम्, नासिकायाम्, (समुच्चारितो भवति), एवम्, रङ्गस्य, द्विमात्रता, (भवति)।

शब्दार्थ—एकमात्रः = एकमात्रिक, हृदये = हृदय में, अर्द्धमात्रः = अर्द्ध-मात्रिक, मूर्धनि = मूर्धा में, तथा च = और, अर्द्धम् = अर्द्धमात्रिक, नासिकायाम् = नासिका में, (समुच्चारितो भवति = समुच्चारित होता है)। एवम् = इस प्रकार, रङ्गस्य = रङ्ग की, द्विमात्रता = द्विमात्रता, (भवति = होती है)।

व्याख्या—रङ्ग वर्ण की एक मात्रा हृदय में, अर्द्धमात्रा मूर्धा में तथा अर्धमात्रा नासिका में समुच्चारित होती है। इस प्रकार रङ्ग वर्ण की दो मात्राएँ होती हैं॥ २८॥

टिप्पणी—'तु' पादपूरणार्थक हैं।

हृदयादुत्करे तिष्ठन् कांस्येन समनुस्वरन्।
मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वाँ इति निदर्शनम्॥ २९॥

अन्वय—हृदयात्, उत्करे, तिष्ठन्, (रङ्गः), कांस्येन्, समनुस्वरन्, मार्दवम्, च, द्विमात्रम्, च, (समुच्चारयेत्, तत्र), जघन्वाँ, इति, निदर्शनम्, (अस्ति)।

शब्दार्थ—हृदयात् = हृदय से, उत्करे = ऊर्ध्व देशपर्यन्त (= शिर तक), तिष्ठन् = स्थिति को प्राप्त, (रङ्गः = रङ्ग की ध्वनि का), कांस्येन = कांस्यपात्र के स्वर के, समनुस्वरन् = समान, मार्दवम् = मृदु, च = और, द्विमात्रम् = दीर्घ, (समुच्चारयेत् = समुच्चारण करना चाहिए, तत्र = वहाँ), जघन्वाँ = 'जघन्वाँ', इति = यह, निदर्शनम् = दृष्टान्त, (अस्ति = है)।

व्याख्या—हृदय से ऊध्वप्रदेशपर्यन्त (= शिर तक) स्थिति को प्राप्त रङ्ग वर्णन की ध्वनि कांस्यपात्र के स्वर के समान मृदु और दीर्घ समुच्चरित होनी चाहिए। यहाँ 'जघन्वाँ' (ऋग्वेद १-५२-८) को उदाहरण समझना चाहिए॥ २९॥

मध्ये तु कम्पयेत् कम्पमुभौ पाश्वौं समौ भवेत्।
सरङ्गं कम्पयेत् कम्पं रथीवेति निदर्शनम्॥ ३०॥

अन्वय—कम्पम्, तु, मध्ये, कम्पयेत्, उभौ, पाश्वौं, समौ, भवेत्, कम्पम्, सरङ्गम्, कम्पयेत्, (तत्र), रथीव, इति निदर्शनम् (अस्ति)।

शब्दार्थ—कम्पम् = कम्प को, तु = पादपूर्णार्थक. मध्ये = मध्य में, कम्पयेत् = कम्पयुक्त करे। उभौ पाश्वौं = आदि तथा अवसान, समौ = समान, भवेत् = संस्थित रहें। कम्पम् = कम्प का, सरङ्गम् = रङ्ग के साथ, कम्पयेत् = उच्चारण करे। (अत्र = यहाँ), 'रथीव' = रथीव, इति = यह, निदर्शनम् = उदाहरण, (अस्ति = है)।

व्याख्या—कम्प स्वर का उच्चारण मध्य में कम्पनयुक्त करना चाहिए। वहाँ स्वर के आदि और अवसान समान. संस्थित रहने चाहिए। कम्प स्वर का उच्चारण रङ्ग के साथ करे। यहाँ 'रथीव' को उदाहरण के रूप में जानना चाहिए।

टिप्पणी—यदि स्वरित स्वर के बाद उदात्त या स्वरित का उच्चारण करना रहता है तो पूर्ववर्ती स्वरित के उत्तरार्द्ध अनुदात्त का उच्चारण करने में हुए असौविध्य के कारण उस अनुदात्त का सत्वर उच्चारण करना पड़ता है। इसी त्वरा को या त्वरित उच्चारित अनुदात्त स्वर को कम्प कहा जाता है॥ ३०॥

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते॥ ३१॥

अन्वय—वर्णाः एवम्, प्रयोक्तव्याः, (येन, ते), न, अव्यक्ताः, च, न, पीडिताः, (भवेयुः)। सम्यग्, वर्णप्रयोगेण, (जनः), ब्रह्मलोके, महीयते।

शब्दार्थ—वर्णाः = वर्णों का, एवम् = इस प्रकार, प्रयोक्तव्याः = उच्चारण करना चाहिए, (येन = जिससे, ते = वे), न = न, अव्यक्ताः = अस्पष्ट रहें, च = और, न = न तो, पीडिताः = कर्कश, (भवेयुः = होवें)। सम्यग् = अच्छे प्रकार से, वर्णप्रयोगेण = वर्णों का उच्चारण करने से, (जनः = व्यक्ति) ब्रह्मलोके = ब्रह्मलोक में, महीयते = पूजित होता है।

व्याख्या—वर्णों का उच्चारण इस प्रकार करना चाहिए जिससे वे (वर्ण) न तो अस्पष्ट रहें और न ही कर्कश हों। अच्छी प्रकार से वर्णों का उच्चारण करने वाला मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है॥ ३१॥

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः॥ ३२॥

अन्वय—गीती, शीघ्री, शिरःकम्पी, लिखितपाठकः, अनर्थज्ञः, तथा च, अल्पकण्ठः, एते, षट्, पाठकाधमाः, (भवन्ति)।

शब्दार्थ—गीती = गान करने वाला, शीघ्री = शीघ्रता से पढ़ने वाला, शिरःकम्पी = शिर कँपाकर पढ़ने वाला, लिखितपाठकः = पाठ करना न जानने पर भी जो लिखा है उसी को किसी प्रकार पढ़ने का प्रयत्न करने वाला, अनर्थज्ञः = अर्थज्ञान से रहित होकर पढ़ने वाला, तथा च = और, अल्पकण्ठः = अत्यन्त सङ्कुचित (= शिथिल) कण्ठ से पाठ को पढ़ने वाला, एते = ये, षट् = छः, पाठकाधमाः = पाठक अधम, (भवन्ति = होते हैं।)

व्याख्या—गानपूर्वक, शीघ्रता से, शिर को हिलाते हुए, जो जैसा लिखा हो उसे उसी रूप में अथवा अपने हाथ से लिखित स्तोत्र का पाठ करने वाला, अर्थ को समझे विना और अत्यन्त सङ्कुचित अर्थात् शिथिल कण्ठ से पाठ करने वाला—ये छः प्रकार के पाठक अधम होते हैं अथवा ये छः प्रकार के पाठक पाठकों में अधम माने जाते हैं॥ ३२॥

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः॥ ३३॥

अन्वय—माधुर्यम्, अक्षरव्यक्तिः, पदच्छेदः, सुस्वरः, धैर्यम्, च, लयसमर्थम्, एते, षट्, पाठकाः, गुणाः, (सन्ति)।

शब्दार्थ—माधुर्यम् = मधुरता, अक्षरव्यक्तिः = वर्णोच्चारण की सुस्पष्टता, पदच्छेदः = पदों का विभाग, सुस्वरः = सुस्वरता अथवा उदात्तादि स्वरों का यथावत् उच्चारण, धैर्यम् = गाम्भिर्य अथवा मन्दगतित्व, च = और, लयसमर्थम् = लययुक्तता, एते = ये, षट् = छः, पाठकाः = पाठकसम्बन्धी, गुणाः = गुण, (सन्ति = हैं)।

भावार्थ—मधुरता, वर्णोच्चारण की सुस्पष्टता, पदों का विभाग, सुस्वरता अथवा उदात्तादि स्वरों का यथावत् उच्चारण, गाम्भिर्य अथवा मन्दगतित्व और लययुक्तता—ये छः पाठक के गुण हैं॥ ३३॥

शङ्कितं भीतमुद्दुष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।
काकस्वरं शिरसिगं तथा स्थानविवर्जितम्॥ ३४॥
उपांशुदष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम्।
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम्॥ ३५॥

अन्वय—शङ्कितम्, भीतम्, उद्घुष्टम्, अव्यक्तम्, अनुनासिकम्, काकस्वरम्, शिरसिगम्, तथा, स्थानविवर्जितम्, उपांशुदष्टम्, त्वरितम्, निरस्तम्, विलम्बितम्, गद्गदितम्, प्रगीतम्, निष्पीडितम्, गस्तपदाक्षरम्, दीनम्, च तु, सानुनास्यम्, न, वदेत्।

शब्दार्थ—शङ्कितम् = संशययुक्त, भीतम् = भयसहित, उद्धुष्टम् = उच्चस्वरसंयुत अथवा विषमस्वर युक्त (= एक पद के कुछ वर्णों का मन्द, कुछ का मध्यम और कुछ का तारस्वरयुक्त अथवा आवश्यक न होने पर भी तारस्वर-युक्त), अव्यक्तम् = अस्पष्ट, अनुनासिकम् = अनुनासिक युक्त, काकस्वरम् = काक के स्वर के समान कर्कश स्वरयुक्त, शिरसिगम् = अनावश्यक रूप से मूर्धा को पीडित कर, तथा = और, स्थानविवर्जितम् = स्थानभ्रष्ट (= उचित उच्चारण स्थान से भिन्न स्थान से युक्त), उपांशुदष्टम् = अत्यन्त मन्दस्वरयुक्त, त्वरितम् = अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक, निरस्तम् = निष्ठुर, विलम्बितम् = अत्यन्त विलम्बयुक्त, गद्गदितम् = गद्गदितस्वरयुक्त (= तुतलाकर), प्रगीतम् = गानपूर्वक, निष्पीडितम् = निष्पीडित (= उच्चारणस्थान के अनावश्यक सङ्कोचयुक्त), ग्रस्तपदाक्षरम् = जिह्वामूल में ही दबाकर (= बीच-बीच में पद अथवा वर्ण को व्यक्त किये विना ही), दीनम् = दीनतापूर्वक, च तु = तथा, सानुनास्यम् = निरनुनासिक को भी सानुनासिकयुक्त, न = नहीं, वदेत् = उच्चारण करना चाहिए।

व्याख्या—संदिग्धरूप में, भयातुर होकर, उच्चस्वरयुक्त अथवा विषमस्वरयुक्त (= एक पद के कुछ वर्णों का मन्द, कुछ का मध्यम और कुछ

का तारस्वर में अथवा आवश्यक न होने पर भी तारस्वर में), अस्पष्ट रूप में, अनुनासिक रूप में, काक के स्वर के समान कर्कश रूप में, अनावश्यक रूप से मूर्धा को पीड़ित करके, उचित उच्चारणस्थान से भिन्न स्थान से, अत्यन्त मन्दस्वर में जिससे श्रोता तक ध्वनि न पहुँच सके, अत्यन्त शीघ्रता से, निष्ठुरतापूर्वक अर्थात् उच्चारणस्थानों और करणों का अपकर्ष करके, अत्यन्त विलम्ब से, तुतलाकर गाने के समान, उच्चारणस्थान का अनावश्यक सङ्कोच करके, जिह्वामूल में ही दबाते हुए (= बीच-बीच में पदों अथवा वर्णों को व्यक्त किये विना ही), दीनभाव से तथा निरनुनासिक को भी सानुनासिक करके (वर्णों का) उच्चारण नहीं करना चाहिए॥ ३४-३५॥

प्रातः पठेन्नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन।
मध्यन्दिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसङ्कूजितसन्निभेन॥ ३६॥

अन्वय—प्रातः, उरःस्थितेन, शार्दूलरुतोपमेन, च, मध्यन्दिने, कण्ठगतेन, चक्राह्वसङ्कूजितसन्निभेन, एव, स्वरेण, नित्यम्, वर्णान्, पठेत्।

शब्दार्थ—प्रातः = प्रातःकाल (के यागकर्म) में, उरःस्थितेन = हृदयस्थित, शार्दूलरुतोपमेन = सिंह के नाद के समान (स्वर से), च = और, मध्यन्दिने = माध्यन्दिन (यागकर्म) में, कण्ठगतेन = कण्ठस्थित, चक्राह्वसङ्कूजित-सन्निभेन = चक्रवाक के शब्द के समान, एव = ही, स्वरेण = ध्वनि से, नित्यम् = सर्वदा, (वर्णान् = वर्णों को), पठेत् = पठना चाहिए।

व्याख्या—प्रातःकालीन यागकर्म में हृदयस्थित (= हृदयोद्भूत) सिंह के नाद के समान स्वर से और माध्यन्दिन यागकर्म में कण्ठस्थित चक्रवाक के शब्द के समान ही ध्वनि से सर्वदा वर्णों का उच्चारण करना चाहिए॥ ३६॥

तारं तु विद्यात् सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम्।
मयूरहंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन॥ ३७॥

अन्वय—तृतीयम्, सवनम्, शिरःस्थितेन, मयूरहंसान्यभृतस्वराणाम्, तुल्येन, नादेन, (वर्णान्, उच्चारयेत्), सदा, शिरोगतम्, प्रयोज्यम्, तु, तारम्, विद्यात्।

शब्दार्थ—तृतीयम् = तृतीय अर्थात् सायङ्कालीन, सवनम् = यागकर्म में, शिरःस्थतेन = मूर्धावस्थित, मयूरहंसान्यभृतस्वराणाम् = मयूर, हंस और कोकिल के स्वरों के, तुल्येन = समान, नादेन = ध्वनि से, (वर्णान् = वर्णों का, उच्चरयेत् = उच्चारण करे), च = और, तत् = वह (उच्चारण), सदा = सतत, शिरोगतम् = मूर्धागत, प्रयोज्यम् = प्रयुक्त हो, तु = तथा, तारम् = उच्चैस्तर, विद्यात् = रहे।

व्याख्या—सायङ्कालीन यागकर्म में मूर्धावस्थित मयूर, हंस और कोकिल के स्वरों के समान ध्वनि से वर्णों का उच्चारण करना चाहिए और वह उच्चारण सर्वदा मूर्धावस्थित प्रयुक्त होना चाहिए तथा उच्चस्वर में होना चाहिए॥ ३७॥

अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नेमस्पृष्टाः शलः स्मृताः।
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधानुप्रदानतः॥ ३८॥

अन्वय—अचः, अस्पृष्टाः, यणः, ईषत्, तु, शलः, नेमस्पृष्टाः, स्मृताः, शेषाः, हलः, स्पृष्टाः, प्रोक्ताः। (सम्प्रति), अनुप्रदानतः, निबोध।

शब्दार्थ—अचः = अच् अर्थात् स्वर, अस्पृष्टाः = स्पर्शविहीन अर्थात् विवृत, यणः = यण् अर्थात् य, व, र, ल, ईषत् = ईषत्स्पृष्ट तथा ईषद्विवृत, तु = और, शलः = श, ष, स, ह, नेमस्पृष्टाः = अर्धस्पृष्ट तथा अर्धविवृत, स्मृताः = कहे गये हैं, शेषाः = अवशिष्ट, हलः = हल् वर्ण (व्यञ्जन), स्पृष्टाः = स्पृष्ट, प्रोक्ताः = कहे गये हैं। (सम्प्रति = अब), अनुप्रदानतः = बाह्यप्रयत्न से, निबोध = समझें।

व्याख्या—स्वरों का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत होता है, य, व, र, तथा ल वर्णों का ईषत्स्पृष्ट और ईषद्विवृत होता है एवम् श, ष, स और ह वर्णों का अर्धस्पृष्ट तथा अर्धविवृत प्रयत्न होता है। शेष व्यञ्जन वर्णों का आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट होता है। अब आगे बाह्यप्रयत्न के अनुसार वर्णों का विवेचन समझें॥ ३८॥

ञमोऽनुनासिका न ह्रौ नादिनः हझषः स्मृताः।
ईषन्नादा यणो जशश्च श्वासिनस्तु खफादयः॥ ३९॥
ईषच्छ्वासांश्चरो विद्याद् गोर्धामैतत्प्रचक्षते।
दाक्षीपुत्रपाणिनिना येनेदं व्यापितं भुवि॥ ४०॥

अन्वय—ञमः, अनुनासिकाः, (विद्यन्ते), ह्रौ, न, (स्तः), हझषः, नादिनः, स्मृताः, यणः, च, जश्, ईषन्नादाः, तु, खफादयः, श्वासिनः, (सन्ति), चरः, ईषच्छ्वासान् विद्यात्, (सुधियः), एतत्, गोः, धाम, प्रचक्षते, येन, दाक्षीपुत्रपाणिनिना, इदम्, भुवि, व्यापितम्।

शब्दार्थ—ञमः = ञम् अर्थात् ञ, म, ङ, ण, न, अनुनासिकाः = अनुनासिक, (विद्यन्ते = हैं), ह्रौ = हकार तथा रेफ, न = (अनुनासिक से) रहित, (स्तः = हैं), हझषः = हकार एवम् झष् (= झ, भ, घ, ढ, ध), नादिनः = नाद वाले अर्थात् संवार तथा घोष (बाह्य प्रयत्न) वाले, स्मृता = कहे गये हैं, यणः = यण् (य, व, र, ल), च = और, जश् = जश् (ज, ब, ग, ड,

द), ईषन्नादाः = ईषन्नाद वाले, तु = तथा, खफादयः = खफादि (= ख, फ, छ, ठ, थ), श्वासिनः = श्वास (बाह्य प्रयत्न) वाले, (सन्ति = हैं), चरः = चर् (च, ट, त, क, प, श, ष, स), को ईषत् श्वास वाला, विद्यात् = जाने, (सुधियः = विद्वज्जन), एतत् = इस (शास्त्र) को, गोः = वाणी का, धाम = स्थान, प्रचक्षते = कहते हैं, येन = प्रसिद्ध, दाक्षीपुत्रपाणिनिना = दाक्षी-पुत्र पाणिनि ने, इदम् = इस (शास्त्र) को, भुवि = पृथिवी पर, व्यापितम् = प्रवर्तित किया।

व्याख्या—ञम् = ञ, म, ङ, ण तथा न वर्णों को अनुनासिक जानना चाहिए। हकार तथा रेफ अनुनासिक से रहित हैं। हकार तथा झष = झ, भ, घ, ढ, और ध को संवार और घोष बाह्यप्रयत्न वाला जानना चाहिए। यण् = य, व, र तथा ल और जश् = ज, ब, ग, ड एवम् द को ईषन्नाद वाला तथा ख, फ, छ, ठ और थ को श्वास बाह्यप्रयत्न वाला समझना चाहिए। चर् = च, ट, त, क, प, श, ष और स को ईषत् श्वास वाला जानें। विद्वान् लोग इस शास्त्र को वाणी का स्थान कहते हैं। प्रसिद्ध दाक्षी-पुत्र पाणिनि ने इस (शास्त्र) को पृथिवी पर प्रवर्तित किया है॥ ३९-४०॥

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥ ४१॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥ ४२॥

अन्वय—वेदस्य, पादौ, छन्दः, अथ, हस्तौ, कल्पः, पठ्यते, चक्षुः, ज्योतिषाम्-अयनम्, (तथा), श्रोत्रम्, निरुक्तम्, उच्यते। वेदस्य, घ्राणम्, शिक्षा, तु, मुखम्, व्याकरणम्, स्मृतम्, तस्मात्, साङ्गम्, (वेदम्), अधीत्य, एव, (अध्येता), ब्रह्मलोके, महीयते।

शब्दार्थ—वेदस्य = वेद (शास्त्ररूपी पुरुष) के, पादौ = चरण, छन्दः = छन्दःशास्त्र अर्थात् वृत्तशास्त्र, अथ = तथा, हस्तौ = हाथ, कल्पः = कल्पशास्त्र, पठ्यते = कहे गये हैं, चक्षुः = नेत्र, ज्योतिषाम्-अयनम् = ग्रह-नक्षत्र आदि की गति के ज्ञापक ज्योतिषशास्त्र को, (तथा = और), श्रोत्रम् = कर्ण, निरुक्तम् = निरुक्त को, उच्यते = कहा गया है। वेदस्य = वेद (-रूपी पुरुष) की, घ्राणम् = नासिका, शिक्षा = शिक्षाशास्त्र को, तु = और मुखम् = मुख, व्याकरणम् = व्याकरण शास्त्र को, स्मृतम् = कहा गया है, तस्मात् = इसलिए, साङ्गम् = अङ्गों सहित, (वेदम् = वेद को) अधीत्य = पढ़कर, एव = ही, (अध्येता = पढ़ने वाला), ब्रह्मलोके = ब्रह्मलोक में, महीयते = सम्मानित होता है।

व्याख्या—वेदशास्त्ररूपी पुरुष के चरण छन्दःशास्त्र अर्थात् पिङ्गलमुनि-प्रणीत वृत्तशास्त्र को तथा हाथ कल्पशास्त्र को कहा गया है। इसी प्रकार उस

पुरुष के नेत्र ग्रह-नक्षत्र आदि की गति के ज्ञापक ज्योतिषशास्त्र को और कर्ण निरुक्त को माना गया है। वेदरूपी पुरुष की नासिका शिक्षाशास्त्र और मुख व्याकरणशास्त्र है। इसलिए उक्त छः अङ्गों सहित वेदशास्त्र को पढ़ कर ही मनुष्य ब्रह्मलोक में सम्मानित होता है॥ ४१-४२॥

उदात्तमाख्याति वृषोऽङ्गुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा।
उपान्तमध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव॥ ४३॥

अन्वय—प्रदेशिनीमूलविनिष्टमूर्धा, अङ्गुलीनाम्, वृषः, उदात्तम्, उपान्तमध्ये, धृतम्, (यथा स्यात् तथा), स्वरितम्, च, कनिष्ठिकायाम्, अनुदात्तम्, एव, आख्याति।

शब्दार्थ—प्रदेशिनीमूलविनिष्टमूर्धा = तर्जनी के मूल से सम्बद्ध अग्रभाग वाला, अङ्गुलीनाम् = अङ्गुलियों में, वृषः = श्रेष्ठ अर्थात् अङ्गुष्ठ, उदात्तम् = उदात्त को, उपान्तमध्ये = अनामिका के मध्य में, धृतम् = संसक्त, (यथा स्यात् तथा = होकर), स्वरितम् = स्वरित को, च = और कनिष्ठिकायाम् = कनिष्ठिका (के मध्य) में (संसक्त होकर), अनुदात्तम् = अनुदात्त को, एव = ही, आख्याति = अभिव्यक्त करता है।

व्याख्या—तर्जनी के मूल से सम्बद्ध अग्रभाग वाला अङ्गुष्ठ उदात्त स्वर को, अनामिका के मध्य भाग में संसक्त होकर अङ्गुष्ठ स्वरित स्वर को और कनिष्ठिका के मध्य भाग में संसक्त होकर अङ्गुष्ठ अनुदात्त स्वर को ही अभिव्यक्त करता है॥ ४३॥

उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात् प्रचयं मध्यतोऽङ्गुलिम्।
निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम्॥ ४४॥

अन्वय—उदात्तम्, प्रदेशिनीम्, प्रचयम्, मध्यतः—अङ्गुलिम्, निहतम्, कनिष्ठिक्याम्, तु, स्वरितम्, उपकनिष्ठिकाम्, विद्यात्।

शब्दार्थ—उदात्तम् = उदात्त को, प्रदेशिनीम् = तर्जनी-साध्य, प्रचयम् = प्रचय को, मध्यतः-अङ्गुलिम् = मध्यमाङ्गुलि-साध्य, निहतम् = अनुदात्त को, कनिष्ठिक्याम् = कनिष्ठिका-साध्य, तु = और, स्वरितम् = स्वरित को, उपकनिष्ठिकाम् = अनामिका-साध्य, विद्यात् = जाने।

व्याख्या—उदात्त स्वर का सूचक तर्जनी को, प्रचय स्वर का सूचक मध्यमा को, अनुदात्त स्वर का सूचक कनिष्ठिका को तथा स्वरित स्वर का सूचक अनामिका को समझना चाहिए॥ ४४॥

अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम्।
मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नवपदशय्या॥ ४५॥

अन्वय—अन्तोदात्तम्, आद्युदात्तम्, उदात्तम्, अनुदात्तम्, नीचस्वरितम्, मध्योदात्तम्, स्वरितम्, द्व्युदात्तम्, त्र्युदात्तम्–इति नव पदशय्या (भवति)।

शब्दार्थ—अन्तोदात्तम् = अन्तोदात्त, आद्युदात्तम् = आद्युदात्त, उदात्तम् = उदात्त, अनुदात्तम् = अनुदात्त, नीचस्वरितम् = नीचस्वरित, मध्योदात्तम् = मध्योदात्त, स्वरितम् = स्वरित, द्व्युदात्तम् = द्व्युदात्त, त्र्युदात्तम् = त्र्युदात्त, इति = इस प्रकार, नवपदशय्या = स्वरों केआश्रय नौ प्रकार के पद, (भवति = होते हैं)।

व्याख्या—अन्तोदात्त, आद्युदात्त, उदात्त, अनुदात्त, नीचस्वरित (अधः स्वरित), मध्योदात्त, स्वरित, द्व्युदात्त, त्र्युदात्त इस प्रकार स्वरों की संस्थिति नौ प्रकार के पदों में होती है॥ ४५॥

अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषां स्वर्बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती।
अग्निरित्यन्तोदात्तं सोम इत्याद्युदात्तम्।
प्रेत्युदात्तं व इत्यनुदात्तं वीर्यं नीचस्वरितम्॥ ४६॥
हविषां मध्योदात्तं स्वरिति स्वरितम्।
बृहस्पतिरिति द्व्युदात्तमिद्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तम्॥ ४७॥

अन्वय—"अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषां स्वर्बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती" (इत्येतेषु उदाहरणेषु) 'अग्निः'–इति, अन्तोदात्तम् 'सोमः'–इति, आद्युदात्तम्, 'प्र'–इति, उदात्तम्, 'वः'–इति अनुदात्तम्, 'वीर्यम्'–(इति), नीचस्वरितम्, 'हविषाम्'–(इति), मध्योदात्तम्, 'स्वः'–इति, स्वरितम्, 'बृहस्पतिः'–इति, द्व्युदात्तम्, 'इन्द्राबृहस्पती'–इति, (च), त्र्युदात्तम्, (अस्ति)।

शब्दार्थ—"अग्निः सोमः प्र वो वीर्यं हविषां स्वर्बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती" (इत्येतेषु = इन, उदाहरणेषु = उदाहरणों में), 'अग्निः'–इति = यह, अन्तोदात्तम् = अन्तोदात्त, 'सोमः'–इति = यह, 'आद्युदात्तम्' = आद्युदात्त, 'प्र'–इति = यह, उदात्तम् = उदात्त, 'वः'–इति = यह, अनुदात्तम् = अनुदात्त, वीर्यम् = (इति = यह), नीचस्वरितम् = नीचस्वरित, 'हविषाम्'–(इति = यह), मध्योदात्तम् = मध्योदात्त, 'स्वः'–इति = यह, स्वरितम् = स्वरित, 'बृहस्पतिः'–इति = यह, 'द्व्युदात्तम्' = द्व्युदात्त, 'इन्द्राबृहस्पती'–इति = यह, 'त्र्युदात्तम्' = त्र्युदात्त, (अस्ति = है)।

व्याख्या—'अग्निः सोमः' आदि उदाहरणों में 'अग्निः' अन्तोदात्त का, 'सोमः' आद्युदात्त का, 'प्र' उदात्त का, 'वः' अनुदात्त का, 'वीर्यम्' नीचस्वरित

का, 'हविषाम्' मध्योदात्त का, 'स्वः' स्वरित का, 'बृहस्पतिः' द्व्युदात्त का और 'इन्द्राबृहस्पती' त्र्युदात्त का उदाहरण है॥ ४६-४७॥

अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः।
स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः॥ ४८॥

अन्वय—अनुदात्तः, हृदि, ज्ञेयः, उदात्तः, मूर्ध्नि, उदाहृतः, स्वरितः, कर्णमूलीयः, (तथा), प्रचयः, सर्वास्ये, स्मृतः।

शब्दार्थ—अनुदात्त- = अनुदात्त (का स्थान), हृदि = हृदय में, ज्ञेयः = जानना चाहिए, उदात्तः = उदात्त (का स्थान), मूर्ध्नि = मूर्धा में, उदाहृतः = जानना चाहिए, स्वरितः = स्वरित (का स्थान) कर्णमूलीयः = कर्णमूल में, (तथा = और), प्रचयः = प्रचय अर्थात् स्वरितोत्तरवर्त्ती अनुदात्त (का स्थान), सर्वास्ये = सम्पूर्ण मुख (नासाग्रभाग) में, स्मृतः = जानना चाहिए।

व्याख्या—अनुदात्त स्वर का उच्चारण करते समय हाथ का हृदय भाग में सञ्चारण करना चाहिए। इसीप्रकार उदात्त स्वर का उच्चारण करते समय मूर्धा प्रदेश में, स्वरित का उच्चारण करते समय नासाग्रभाग में हाथ का सञ्चारण करना चाहिए॥ ४८॥

चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं चैव वायसः।
शिखी रौति त्रिमात्रं तु न कुलस्त्वर्धमात्रकम्॥ ४९॥

अन्वय—चाषः, तु, मात्राम्, च, वायसः, द्विमात्रम्, एव, वदते, शिखी, त्रिमात्रम्, तु, नकुलः तु, अर्धमात्रकम्, रौति।

शब्दार्थ—चाषः = नीलकण्ठ, तु = तो, मात्राम् = एकमात्राकालिक, च = और, वायसः = कौआ, द्विमात्रम् = द्विमात्राकालिक, एव = ही, वदते = बोलता है, शिखी = मयूर, त्रिमात्रम् = त्रिमात्राकालिक, तु = और, नकुलः = नेवला, अर्धमात्रकम् = अर्धमात्राकालिक, रौति = शब्द करता है।

व्याख्या—नीलकण्ठ पक्षी एकमात्राकालिक, कौआ द्विमात्राकालिक, मयूर त्रिमात्राकालिक और नेवला अर्धमात्राकालिक शब्द करता है॥ ४९॥

कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम्।
न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्विषात्॥ ५०॥

अन्वय—कुतीर्थात्, आगतम्, (ब्रह्म), दग्धम्, अपवर्णम्, च, भक्षितम्, (भवति), तस्य, पाठे, किल्बिषात्, पापाहेः, इव, मोक्षः, न, अस्ति।

शब्दार्थ—कुतीर्थात् = आचारविहीन गुरु से, आगतम् = पढ़ा गया, (ब्रह्म = वेद), दग्धम् = निःसत्त्व, अपवर्णम् = अशुद्धवर्णयुक्त, च = और,

भक्षितम् = सुस्पष्टतारहित अथवा विकलाङ्ग, (भवति = होता है), तस्य = उस (वेद) का, पाठे = पाठ करने पर, किल्विषात् = पाप से, पापाहेः = दुष्ट सर्प के, इव = समान, मोक्षः = मोक्ष, न = नहीं, अस्ति = है।

व्याख्या—आचारविहीन गुरु से पढ़ा गया वेद निःसत्त्व, अशुद्धवर्णयुक्त और सुस्पष्टतारहित अथवा विकलाङ्ग होता है, अत एव उस वेदशास्त्र का पाठ करने वाले व्यक्ति को पाप से उसी प्रकार मोक्ष नहीं मिलता जिस प्रकार दुष्ट सर्प से आक्रान्त व्यक्ति को उससे मोक्ष नहीं मिलता॥ ५०॥

सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नायं सुव्यवस्थितम्।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते॥ ५१॥

अन्वय—सुतीर्थात्, आगतम्, ब्रह्म, व्यक्तम्, स्वाम्नायम्, (च), सुव्यवस्थितम्, (भवति), सुवक्त्रेण, (च), सुस्वरेण, प्रयुक्तम्, (तत्), राजते।

शब्दार्थ—सुतीर्थात् = सदाचारयुक्त गुरु से, आगतम् = पढ़ा गया, ब्रह्म = वेदशास्त्र, व्यक्तम् = सुस्पष्ट, स्वाम्नायम् = सम्प्रदायशुद्ध, (च = और), सुव्यवस्थितम् = सुव्यवस्थित, (भवति = होता है), सुवक्त्रेण = सुकण्ठ से, (च = और), सुस्वरेण = सुन्दर ध्वनि से, प्रयुक्तम् = समुच्चारित, (तत् = वह वेदशास्त्र), राजते = सुशोभित होता है।

व्याख्या—सदाचारी गुरु से पढ़ा गया वेदशास्त्र सुस्पष्ट, सम्प्रदाय शुद्ध और सुव्यवस्थित होता है। इस प्रकार का वेदशास्त्र सुकण्ठ और सुन्दर ध्वनि से उच्चारित होने पर सुशोभित होता है॥ ५१॥

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वतोऽपराधात्॥ ५२॥

अन्वय—स्वरतः, वा, वर्णतः, हीनः, मन्त्रः, मिथ्याप्रयुक्तः, (सन्), तम्, अर्थम्, न, आह, सः, वाग्वज्रः, (भूत्वा), यजमानम्, हिनस्ति, यथा, स्वर तः, अपराधात्, इन्द्रशत्रुः, (यजमानम्, हतवान्)।

शब्दार्थ—स्वरतः = स्वर से, वा = अथवा, वर्णतः = वर्ण से, हीनः = रहित, मन्त्रः = मन्त्र, मिथ्याप्रयुक्तः = अलीक उच्चारित, (सन् = होता हुआ), तम् = उस (अभीष्ट), अर्थम् = अर्थ को, न = नहीं, आह = प्रकट करता है, सः = वह, वाग्वज्रः = वाग्वज्र, (भूत्वा = होकर), यजमानम् = यजमान का, हिनस्ति = विनाश कर देता है, यथा = जैसे, स्वरतः = स्वरजनित, अपराधात् = अपराध से, इन्द्रशत्रुः = 'इन्द्रशत्रुः' पद, यजमानम् = यजमान को, हतवान् = नष्ट कर दिया।

व्याख्या—स्वर से अथवा वर्ण से रहित मन्त्र मिथ्याप्रयुक्त होता हुआ अभीप्सित अर्थ को प्रकट नहीं करता है, वह (मन्त्र) वाग्वज्र बनकर यजमान का ही विनाश कर देता है। जैसे स्वर के दोष से उच्चारित 'इन्द्रशत्रुः' पद यागकर्ता का विनाश कर दिया।

टिप्पणी—त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप की कठोर तपस्या से क्षुब्ध होकर इन्द्र ने उसका वध कर दिया। इस पर त्वष्टा अधिक क्रुद्ध हुआ और इन्द्र का वध करने वाले 'वृत्र' नामक पुत्र की कामना से उसने एक आभिचारिक यज्ञ किया। उसमें 'इन्द्रशत्रुर्विवर्धस्व' इस मन्त्र से ऋत्विजों ने हवन किया। 'इन्द्रशत्रुः' पद में "इन्द्रः शत्रुर्यस्य सः" इस विग्रह के अनुसार बहुव्रीहि समास करने पर आद्युदात्त होता है और "इन्द्रस्य शत्रुः" इस विग्रह के अनुसार षष्ठीतत्पुरुष समास करने पर अन्तोदात्त होता है। ऋत्विजों का अभीष्ट अर्थ षष्ठीतत्पुरुष का था, किन्तु भ्रमवश उन्होंने अन्तोदात्त के स्थान पर आद्युदात्त का उच्चारण किया। इससे 'इन्द्रशत्रुः' पद से बहुव्रीहि समास वाला अर्थ उपस्थित हुआ और स्वरदोष के कारण इन्द्र ही वृत्रासुर का शत्रु (घातक) हो गया। स्वरदोष का शास्त्र में यह सुप्रसिद्ध उदाहरण है।

अनक्षरं हतायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम्।
अक्षता शस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके॥५३॥

अन्वय—(ब्रह्म), अनक्षरम्, (यजमानम्), हतायुष्यम्, (तथा), विस्वरम्, व्याधिपीडितम्, (करोति, एवम्, ब्रह्म), वज्रम्, (सत्), अक्षता, शस्त्ररूपेण, (यजमानस्य), मस्तके, पतति।

शब्दार्थ—(ब्रह्म = वेदाक्षर), अनक्षरम् = दुष्ट होने पर (यजमानम् = यजमान को), हतायुष्यम् = आयुरहित, (तथा = और), विस्वरम् = स्वरविहीन होने पर, व्याधिपीडितम् = रोगयुक्त, (करोति = बना देता है, एवम् = इस प्रकार, ब्रह्म = वेदशास्त्र, वज्रम् = वज्र, (सत् = होता हुआ), अक्षता = अप्रतिहत, शस्त्ररूपेण = शस्त्र के रूप में, (यजमानस्य = यजमान के), मस्तके = शिर पर, पतति = गिरता है।

व्याख्या—वेदाक्षर दुष्ट होने पर यजमान की आयु का विनाश करता है और उदात्तादि स्वरोंसे विहीन होने पर रोगयुक्त बनाता है। इस प्रकार वेदशास्त्र वज्रस्वरूप होकर अप्रतिहत शस्त्र के रूप में यजमान के शिर पर गिरकर उसे विनष्ट कर देता है॥५३॥

हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम्।
ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति॥५४॥

अन्वय—यः हस्तहीनम्, स्वरवर्णविवर्जितम्, (वेदम्), अधीते, (सः), ऋग्यजुःसामभिः, दग्धः, (सन्), वियोनिम्, अधिगच्छति।

शब्दार्थ—यः = जो अध्येता, हस्तहीनम् = हस्तसञ्चालन से रहित, स्वरवर्णविवर्जितम् = स्वर तथा अक्षर से भ्रष्ट, (वेदम् = वेद को), अधीते = पढ़ता है, (सः = वह), ऋग्यजुःसामभिः = ऋग्वेद,यजुर्वेद तथा सामवेद (-रूपी अग्नि) से, दग्धः = दग्ध, (सन् = होता हुआ), वियोनिम् = नीच योनि में, अधिगच्छति = जाता है।

व्याख्या—जो अध्येता पूर्ववर्णित विधि के अनुकूल हाथों द्वारा निर्देश किये विना उदात्तादि स्वरों और अक्षरों से भ्रष्ट वेद का पाठ करता है वह व्यक्ति ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदरूपी अग्नि अर्थात् वेदत्रयाग्नि से दग्ध होकर नीच योनि में जन्म लेता है॥ ५४॥

हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम्।
ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते॥ ५५॥

अन्वय—यः, हस्तेन, स्वरवर्णार्थसंयुतम्, वेदम्, अधीते, (सः), ऋग्यजुःसामभिः, पूतः, (सन्), ब्रह्मलोके, महीयते।

शब्दार्थ—यः = जो अध्येता, हस्तेन = हस्तसञ्चालन के द्वारा, स्वरवर्णार्थसंयुतम् = स्वर, वर्ण तथा अर्थ से युक्त, वेदम् = वेद को, अधीते = पढ़ता है, (सः = वह), ऋग्यजुःसामभिः = ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद से, पूतः = पवित्र, (सन् = होता हुआ), ब्रह्मलोके = ब्रह्मलोक में, महीयते = पूजित होता है।

व्याख्या—जो अध्येता पूर्ववर्णित विधि के अनुकूल हाथों द्वारा निर्देश करके उदात्तादि स्वरों, वर्णों और अर्थ से युक्त वेद का पाठ करता है वह व्यक्ति ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद से पवित्र होकर ब्रह्मलोक में सम्मानित होता है॥ ५५॥

शङ्करः शाङ्करीं प्रादाद्दाक्षीपुत्राय धीमते।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः॥ ५६॥

अन्वय—शङ्करः, वाङ्मयेभ्यः, समाहृत्य,शाङ्करीम्, देवीम्, वाचम्, धीमते, दाक्षीपुत्राय, प्रादात्, इति, स्थितिः, (विद्यते)।

शब्दार्थ—शङ्करः = भगवान् शङ्कर ने, वाङ्मयेभ्यः = सम्पूर्ण वाङ्मय से, समाहृत्य = सार को निकालकर, शाङ्करीम् = शाङ्करी अर्थात् शिव-सम्बन्धी, देवीम् = दिव्य, वाचम् = वाणी को, धीमते = बुद्धिमान्, दाक्षीपुत्राय = दाक्षीपुत्र

अर्थात् महर्षि पाणिनि को, प्रादात् = प्रदान किया, इति = यही, स्थितिः = यथार्थ, (विद्यते = है)।

व्याख्या—भगवान् शिव ने सम्पूर्ण वाङ्मय से सार को निकाल कर शाङ्करी दिव्य वाणी अर्थात् व्याकरण विद्या और शिक्षा विद्या को बुद्धिमान् दाक्षीपुत्र पाणिनि को प्रदान किया, यही इस शास्त्र के बारे में वास्तविकता है॥५६॥

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः॥५७॥

अन्वय—येन, महेश्वरात्, अक्षरसमाम्नायम्, अधिगम्य, कृत्स्नम्, व्याकरणम्, प्रोक्तम्, तस्मै, पाणिनये, नमः।

शब्दार्थ—येन = जिस पाणिनि ने, महेश्वरात् = भगवान् शिव से, अक्षरसमाम्नायम् = वर्णसमूह को, अधिगम्य = प्राप्त करके, कृत्स्नम् = सम्पूर्ण, व्याकरणम् = व्याकरण शास्त्र को, प्रोक्तम् = कहा, तस्मै = उस, पाणिनये = पाणिनि को, नमः = नमस्कार है।

व्याख्या—जिस महर्षि पाणिनि ने भगवान् शिव से अ इ उ ण् से लेकर हल्-पर्यन्त चतुर्दशसूत्रात्मक वर्णसमाम्नाय अर्थात् वर्णसमूह को प्राप्त करके सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र का प्रवचन किया है, उस महर्षि पाणिन को नमस्कार है॥५७॥

येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः।
तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः॥५८॥

अन्वय—येन, विमलैः, शब्दवरिभिः, पुंसाम्, गिरः, धौताः, च, अज्ञानजम्, तमः, भिन्नम्, तस्मै, पाणिनये, नमः।

शब्दार्थ—येन = जिस पाणिनि ने, विमलैः = स्वच्छ, शब्दवारिभिः = शब्दरूपी जल से, पुंसाम् = मनुष्यों की, गिरः = वाणी को, धौताः = धोया, च = और, अज्ञानजम् = अज्ञानजनित, तमः = अन्धकार को, भिन्नम् = नष्ट किया, तस्मै = उस, पाणिनये = पाणिनि को, नमः = नमस्कार है।

व्याख्या—जिस महर्षि पाणिनि ने स्वच्छ अर्थात् साधुशब्दरूपी जल से मनुष्यों की वाणी को प्रच्छालित किया और अज्ञानजनित अन्धकार को साधुशब्दस्वरूप परम ज्योति से नष्ट किया उस महर्षि पाणिनि को नमस्कार है॥५८॥

अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः॥५९॥

अन्वय—येन, अज्ञानान्धस्य, लोकस्य, चक्षुः, ज्ञानाञ्जनशलाकया, उन्मीलितम्, तस्मै, पाणिनये, नमः।

शब्दार्थ—येन = जिस पाणिनि ने, अज्ञानान्धस्य = अज्ञानान्ध, लोकस्य = लोक अर्थात् लोगों के, चक्षुः = नेत्रों को, ज्ञानाञ्जनशलाकया = ज्ञानाञ्जनरूपी शलाका से, उन्मीलितम् = उन्मीलित किया, तस्मै = उस, पाणिनये = पाणिनि को, नमः = नमस्कार है।

व्याख्या—जिस महर्षि पाणिनि ने अज्ञान से अन्धे संसार के लोगों के नेत्रों को ज्ञानाञ्जनरूपी शलाका से उन्मीलित किया उस महर्षि पाणिनि को नमस्कार है।

टिप्पणी—पाणिनिविरचित इस शिक्षाशास्त्र में स्वयम् को ही नमस्कार क्यों किया गया है? इस जिज्ञासा की शान्ति के लिए उत्तर यह है कि महर्षि पाणिनि के शिष्य ने उनकी स्तुति की थी और उस शिष्य को प्रसन्न रखने के लिए ही उन्होंने (पाणिनि ने) अपने ग्रन्थ में नमस्कार वाले तीनों श्लोकों को समाहित कर दिया। अपने शिष्य द्वारा अपनी की गयी स्तुति वाले श्लोक को आचार्य वाचस्पति मिश्र ने भी भामती टीका में समाहित किया है। (आ०४ पा० १ श्लो० २)।

अथवा—स्तुतिकर्ता महर्षि पाणिनि महेश्वर से वर प्राप्तकर उन (शिव) के समान ही होकर स्तुत्य हो गये। स्वनिष्ठ अपकर्ष से निरूपित (स्वनिष्ठ) उत्कर्ष से युक्त होकर स्वयम् महर्षि पाणिनि ही नमस्क्रिया के उद्देश्य बन गये। स्वयम् के अपकर्ष के स्वीकारपूर्वक दूसरे का उत्कर्ष स्वीकार करना ही नमन-क्रिया है। यहाँ स्तोता तथा स्तुत्य का अभेद होने से ही महर्षि पाणिनि ने स्वयम् को नमन किया है॥ ५९॥

त्रिनयनमुखनिःसृतामिमां
य इह पठेत् प्रयतः सदा द्विजः।
स भवति धनधान्य (पशु पुत्र) कीर्तिमा-
नतुलं च सुखं समश्नुते दिवीति दिवीति॥ ६०॥

अन्वय—त्रिनयनमुखनिःसृताम्, इमाम्, यः, द्विजः, प्रयतः, (सन्), सदा, पठेत्, सः, इह, धनधान्य (पशुपुत्र) कीर्तिमान्, भवति, च, दिवि, अतुलम्, सुखम्, समश्नुते, इति, दिवीति।

शब्दार्थ—त्रिनयनमुखनिःसृताम् = त्रिलोचन भगवान् शिव के मुख से निकली हुई, इमाम् = इस (पाणिनीय शिक्षा) को, यः = जो, द्विजः = ब्राह्मण, प्रयतः = नियमपूर्वक, (सन् = रहता हुआ), सदा = सर्वदा, पठेत् = पढ़ता है,

सः = वह, इह = इस संसार में, धनधान्य (पशुपुत्र) कीर्तिमान् = धन, धान्य (पशु, पुत्र) और यश वाला, भवति = होता है, च = और, दिवि = स्वर्ग में, अतुलम् = विपुल, सुखम् = सुख को, समश्नुते = प्राप्त करता है, इति = समाप्ति सूचक है, दिवीति = 'दिवीति' यह द्विर्वचन पुनः मङ्गल वचन द्वारा ग्रन्थ की समाप्ति को सूचित करता है।

व्याख्या—त्रिलोचन भगवान् शिवके मुख से निकली हुई इस पाणिनीय-शिक्षा को जो ब्राह्मण नियमपूर्वक सर्वदा पढ़ता है वह इस संसार में धन, धान्य (पशु, पुत्र) और कीर्ति वाला होता है तथा वह स्वर्गलोक में अतुलनीय सुख को प्राप्त करता है, 'दिवीति' यह द्विर्वचन पुनः मङ्गल वचन द्वारा ग्रन्थ की समाप्ति को सूचित करता है।

अथ शिक्षामात्मोदात्तश्च हकारं स्वराणां यथा।
गीत्यचोऽस्पृष्टोदात्तं चाषस्तु शङ्करः एकादश॥ ६१॥

अन्वय—'अथ शिक्षाम्' (इति प्रथमः), 'आत्मा' (इति द्वितीयः), 'उदातश्च' (इति तृतीयः), 'हकारम्' (इति चतुर्थः), 'स्वराणाम्' (इति पञ्चमः), 'यथा' (इति षष्ठः), 'गीती' (इति सप्तमः), अचोऽस्पृष्टाः (इति अष्टमः), 'उदान्तम्' (इति नवमः), 'चाषस्तु' (इति दशमः), 'शङ्करः' (इति) एकादश, (खण्डः, प्रारभ्यते)।

शब्दार्थ—'अथ शिक्षाम्' (इति प्रथमः) = 'अथ शिक्षाम्' से प्रथम, 'आत्मा' (इति द्वितीयः) = 'आत्मा बुद्धया' से द्वितीय, 'उदात्तश्च' (इति तृतीय) = 'उदातश्चानुदात्तश्च' से तृतीय, 'हकारम्' (इति चतुर्थः) = 'हकारं पञ्चमैर्युक्तम्' से चतुर्थ, 'स्वराणाम्' (इति पञ्चमः) = 'स्वराणामूष्मणाञ्चैव' से पञ्चम, 'यथा' (इति षष्ठः) = 'यथा सौराष्ट्रिका' से षष्ठ, 'गीती' (इति सप्तमः) = 'गीती शीघ्री' से सप्तम, 'अचोऽस्पृष्टाः' (इति अष्टमः) = 'अचोऽस्पृष्टाः' से अष्टम, 'उदात्तम्' (इति नवमः) = 'उदात्तमाख्याति' से नवम, 'चाषस्तु' (इति दशमः) = 'चाषस्तु' से दशम, 'शङ्करः' (इति) एकादश = 'शङ्करः शाङ्करीं प्रादात्' से एकादश, (खण्डः = खण्ड, प्रारभ्यते = प्रारम्भ हुआ है)।

व्याख्या—इस पाणिनीयशिक्षा नामक ग्रन्थ में पाँच-पाँच श्लोकों के ग्यारह खण्ड बने हैं। जैसे 'अथ शिक्षाम्.....' से लेकर पाँच श्लोकों तक प्रथम खण्ड, 'आत्मा बुद्धया.......' से लेकर पाँच श्लोकों तक द्वितीय खण्ड, 'उदात्तश्चानुदात्तश्च.....' से लेकर पाँच श्लोकों तक तृतीय खण्ड, 'हकारं पञ्चमैर्युक्तम्.......' से लेकर पाँच श्लोकों तक चतुर्थ खण्ड, 'स्वराणामूष्मणाञ्चैव......' से लेकर पाँच श्लोकों तक पञ्चम खण्ड, 'यथा सौराष्ट्रिका.....' से लेकर पाँच श्लोकों तक षष्ठ खण्ड, 'गीती

शीघ्री·········' से लेकर पाँच श्लोकों तक सप्तम खण्ड, 'अचोऽस्पृष्टा·····' से लेकर पाँच श्लोकों तक अष्टम खण्ड, 'उदात्तमाख्याति·····' से लेकर पाँच श्लोकों तक नवम खण्ड, 'चाषस्तु वदते····' से लेकर पाँच श्लोकों तक दशम खण्ड और 'शङ्करः शाङ्करीं प्रादात्·····' से लेकर पाँच श्लोकों तक एकादश खण्ड बना है।

इस प्रकार इससे विदित होता है कि इस पाणिनीय शिक्षा में कुल ५५ श्लोक हैं। किन्तु सम्प्रति इसमें ६१ पद्य हैं। अतः इनमें पाँच पद्यों को प्रक्षिप्त होना चाहिए। सम्भवतः प्रकृत संस्करण के २८, ३४, ४४, ५३ और ५४ श्लोक प्रक्षिप्त हैं। वस्तुतः इस शिक्षाशास्त्र में सङ्ग्रह वाक्य का श्लोक ६१ होना भी संदिग्ध है॥ ६१॥

पाणिनीयशिक्षा में ''प्रभावती'' नाम की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

श्लोकानुक्रमणिका

●

व्याख्याकार परिचय

डॉ० कमलाप्रसाद पाण्डेय

जन्म	:	६ नवम्बर १९४७
स्थान	:	रतनपुरवा, सीधी (मध्यप्रदेश)
शिक्षा	:	एम०ए० (संस्कृत) सागर वि०वि०, सागर (मध्यप्रदेश) नव्यव्याकरणाचार्य एवम् साहित्याचार्य, सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि०वि०, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) पी-एच०डी०, रविशङ्कर वि०वि०, रायपुर (मध्यप्रदेश)
सम्प्रति	:	आचार्य एवम् अध्यक्ष-संस्कृत-विभाग सी०एम० दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर (छत्तीसगढ़) एवम् अध्यक्ष—संस्कृत अध्ययन मण्डल गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)
प्रकाशित पुस्तक	:	पाणिनीय और सारस्वतीय पारिभाषिक संज्ञाओं का तुलनात्मक अध्ययन

संस्कृत-साहित्य प्रमुख ग्रन्थ

इतिहास, संस्कृति, कला तथा अध्यात्म

महाभारत का काल निर्णय	डॉ. मोहन गुप्त
प्राचीन भारतीय कला में मांगलिक प्रतीक	डॉ. विमलमोहिनी श्रीवास्तव
प्राचीन भारत में यक्ष पूजा	डॉ. कमलेश दूबे
आसन की रोग मुद्राएँ	डॉ. रविन्द्रप्रताप सिंह
शिव की अनुग्रह मूर्तियाँ	डॉ. शान्तिस्वरूप सिन्हा
एक विश्व : एक संस्कृति	डॉ. व्रजवल्लभ द्विवेदी
उत्तिष्ठ कौन्तेय	डॉ. डेविड फ्राली
प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु	डॉ. पृथ्वीकुमार अग्रवाल
गुप्तकालीन कला एवं वास्तु	डॉ. पृथ्वीकुमार अग्रवाल
बुद्ध और बोधिवृक्ष	डॉ. शीला सिंह
मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला	डॉ. मारुतिनन्दन तिवारी, डॉ. कमल गिरि
मध्यकालीन भारतीय प्रतिमालक्षण	डॉ. मारुतिनन्दन तिवारी, डॉ. कमल गिरि
जैन कलातीर्थ : देवगढ़	डॉ. मारुतिनन्दन तिवारी, डॉ. शान्तिस्वरूप सिन्हा
भारतीय संग्रहालय एवं जनसम्पर्क	डॉ. आर. गणेशन्
भारतीय संस्कृति की रूपरेखा	डॉ. पृथ्वीकुमार अग्रवाल
काशी का इतिहास	डॉ. मोतीचन्द्र
काशी के घाट : कलात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ. हरिशंकर
मनीषी की लोकयात्रा (म.म.पं. गोपीनाथ कविराज का जीवन-दर्शन)	डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह
भारतीय धर्म साधना	म.म.पं. गोपीनाथ कविराज
क्रम-साधना	म.म.पं. गोपीनाथ कविराज
अखण्ड महायोग	म.म.पं. गोपीनाथ कविराज
शक्ति का जागरण और कुण्डलिनी	म.म.पं. गोपीनाथ कविराज
श्रीसाधना	म.म.पं. गोपीनाथ कविराज
दीक्षा	म.म.पं. गोपीनाथ कविराज
सनातन-साधना की गुप्तधारा	म.म.पं. गोपीनाथ कविराज
गुप्त भारत की खोज	पॉल ब्रंटन

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

ISBN No. : 81-7124-362-2 मूल्य ?4.00